श्रीअरविन्द कर्मधारा

30 जून, 2021 वर्ष 51 अंक - 3

श्रीअरविन्द आश्रम - दिल्ली शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

मई - जून -2021

(अंक - 3)

संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

लक्ष्य-प्राप्ति

चाहे तपस्या द्वारा हो या समर्पण द्वारा, बस इसका कोई महत्व नही है, महत्वपूर्ण बस यही चीज है कि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख हो। जब एक बार कदम सच्चे मार्ग पर चल पड़े तो कोई वहाँ से हटकर ज्यादा नीची चीज की ओर कै से जा सकता है ? अगर आदमी दृढ़ बना रहे तो पतन का कोई महत्व नही. आदमी फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर आदमी अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नही हो सकती। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें प्रेरित करती है, और वह निश्चित रूप से है, तो लड़खड़ाने, गिरने या श्रद्धा की असफलता का परिणाम में कोई महत्वपूर्णफर्क नही पड़ेगा। सं घर्ष समाप्त होने तक चलते जाना चाहिये। सीधा, खुला हुआ और कं टकहीन मार्ग हमारे सामने है।

श्रीमाँ

ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे
श्रीअरविन्द कर्मधारा

प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ-

हे भगवती माता, वर दे कि यह दिन हमारे लिये तेरी इच्छा के प्रति अधिक पूर्ण आत्मनिवेदन का, तेरे कर्म के प्रति अधिक सर्वांगीण आत्म-समर्पण का, अधिक समग्र आत्म-विस्मृति का, अधिक विशाल प्रकाश का तथा सदा अधिक-से-अधिक गहरे, अधिक सतत और अधिक समग्र होते हुए अन्तर्मिलन में हम हमेशा अधिकाधिक घनिष्ठता में तेरे साथ एक हो और हम तेरे ऐसे सेवक बनें जो तेरे योग्य हो। हमसे हामारा समग्र अहं दूर कर। तुच्छ अभिमान, सारा लोभ और सारा अंधकार निर्मूल कर। वर दे कि हम तेरे दिव्य प्रेम से पूर्णतया प्रज्ज्वलित हों; हमें संसार में अपना प्रकाश-स्तम्भ बना।

विषय-सूची

क्रं. स.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1.	प्रार्थना और ध्यान	श्रीअरविन्द	03
2.	संपादकीय	-अपर्णा	06
3.	कठिनाई में	श्रीअरविन्द	07
4.	अपनी गठरी टटोलें	संकलन	11
5.	श्रीअरविन्द और मृणालिनी देवी	संकलन	12
6.	विनय	शम्सुद्दीन	20
8.	भारतीय धर्म का मर्म	डॉ.जे.पी.सिंह	21
9.	पुर्नजन्म	श्रीअरविन्द	24
10.	श्रीअरविन्द की प्रासंगिकता	डॉ.जे.पी.सिंह	26
11.	ज्योतिर्मय मन	श्रीअरविन्द	29

संपादकीय

-अपर्णा

एक बार समुद्री तूफ़ान के बाद लाखों मछलियाँ किनारे रेत पर तड़प रहीं थीं!

इस भयानक स्थिति को देखकर पास में रहने वाले एक 8 वर्ष के बच्चे से रहा नहीं गया और वह एक एक मछली उठा कर समुद्र में वापस फेंकने लगा!

यह देखकर उसकी माँ बोली.. बेटा! ये लाखों की संख्या में हैं, तू कितनों की जान बचाएगा। यह सुनकर बच्चे ने अपनी गति और तेज़ बढ़ा दी और ताबड़तोड़ मछलियों को पानी में फेंकने लगा। माँ फिर बोली.. बेटा, रहने दे इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

बच्चा जोर जोर से रोने लगा और एक मछली को समुद्र में फेंकते हुए जोर से बोला माँ!

"इसको तो फ़र्क पड़ता है ना?" फिर वह दूसरी मछली को उठाता और उसे पानी में फ़ेककर बोलता माँ "इसको तो फ़र्क पड़ता है ना?" माँ ने बच्चे को सीने से लगा लिया।

साथियों ! आज की इस विषम परिस्थिति में कोशिश करें, महामारी के इस विषम काल में जब कि चारों तरफ भय और आतंक का तांडव सा व्याप्त है, हम भी इस बच्चे की तरह हर एक के साथ इसी प्यार और मदद की भावना से सक्रिय प्रयास करते रहें। न जाने कब किसकी जिंदगी का रूप बदल जाए। कभी ऐसा महसूस हो सकता है कि इससे हमें कोई फ़र्क नहीं पड़ता, मगर यह सच है कि उस व्यक्ति विशेष को फ़र्क पड़ता है ।

संपूर्ण विश्व में, चारों तरफ मृत्यु के रूप में बढ़ते इस भय का जवाब केवल प्रेम ही हो सकता है, प्रेम जो दिव्यता से परिपूर्ण है। हम स्वयं याद रखें और दूसरों को भी स्मरण कराएं कि श्रीमाँ का प्रेम और उनकी कृपा का आवाहन भय की इस कालिमा का एकमात्र उपाय है। निराशा के बादलों से टपकती हर बूंद को आशा और कृपा में रूपांतरित करने वाली आस्था और प्रार्थना को अपना संबल बनाएं। अपने-अपने स्तर पर , संपर्क में आने वाले व्यक्ति मात्र के साथ श्रीमाँ के आश्वासन व उनकी रूपांतरकारी शक्ति को साझा करें। 'इससे फर्क नहीं पड़ता 'वाली मानसिकता' स्वयं ही रोहित हो जाएगी ।

"मुझे पुकारो मेरा प्रेम और सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है" हम विश्वास रखें कि श्रीमाँ के उक्त आश्वासन के समक्ष इन अवसाद के बादलों को छंटना ही होगा।

आस्था विश्वास और निष्ठा के इन्हीं शब्दों के साथ श्रीअरविंद कर्मधारा का अगला आपके लिए प्रस्तुत है।

आप सभी मन प्राण और शरीर के सभी स्तरों पर स्वस्थ और सकुशल रूप से श्रीमां के पथ पर निरंतर अग्रसर होते रहें, यही प्रार्थना है।

शुभेच्छा.....

अपने-आपको दे देना ही है साधना का रहस्य, कोई चीज माँगना और प्राप्त करना नहीं। जितना ही अधिक कोई अपने-आपको देता है उतना ही अधिक उसमें ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती है।

-श्रीअरविन्द

कर्मधारा 1994.अंक,2

कठिनाई में

-श्रीअरविन्द

साधना की प्रारंभिक अवस्था में बराबर ही कठिनाईयाँ उपस्थित होती हैं और उन्नति में बधाएँ आती रहती हैं तथा जब तक आधार तैयार नहीं हो जाता तब तक अंदर के दरवाजों के खुलने में देर लगती है। यदि ध्यान करते समय बराबर ही तुम्हें निश्चलता का अनुभव होता हो और आतंर ज्योति की झलकें मिलती हों, यदि तुम्हारी अंतर्मुखी प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती जा रही हो कि बाहरी बंधन क्षीण होने लगे हों और प्राणगत विक्षोभ अपनी शक्ति खोने लगे हों तो इसका मतलब है कि साधना में तुम्हारी बहुत कुछ उन्नति हो गयी है। योग का मार्ग लंबा है, इस मार्ग की एक-एक इंच जमीन को बहुत अधिक प्रतिरोध का सामना करते हुए जीतना होता है, और साधक में जिस गुण का होना सबसे अधिक आवश्यक है, वह है, धैर्य और एकनिष्ठ अध्यवसाय और उसके साथ–ही–साथ ऐसी श्रद्धा, ऐसा विश्वास जो सब प्रकार की कठिनाईयाँ के आने, विलंब होने तथा विफलताओं के होने पर भी दृढ़ बना रहे।

साधना की प्रारंभिक अवस्था में प्रायः ये बाधाएं आया करती हैं। इनके आने का कारण यह है कि अभी तक तुम्हारी प्रकृति पर्याप्त रूप से ग्रहणशील नहीं हो पाई है। तुम्हें यह पता लगाना चाहिए कि तुम्हारी बाधा कहाँ पर है, मन में है या प्राण में, और फिर तुम्हें वहाँ अपनी चेतना को प्रसारित करने का प्रयास करना चाहिए, वहाँ पर पवित्रता और शांति का अधिक मात्रा में आहवान करना चाहिए तथा उस पवित्रता और शांति में अपनी सत्ता के उस भाग को सच्चाई के साथ और पूर्ण रूप में भागवत शक्ति के चरणों में अर्पण कर देना चाहिए।

प्रकृति का प्रत्येक भाग अपनी पुरानी चाल-ढ़ाल को ज्यों-का-त्यों बनाये रखना चाहता है और जहाँतक उससे संभव होता है, किसी मूलगत परिवर्तन और उन्नति को होने देना नहीं चाहता, क्योंकि ऐसा होने पर उसे अपने से किसी उच्चर शक्ति के अधीन होना पड़ता है, और उसे अपने क्षेत्र में, अपने पृथक साम्राज्य में अपने प्रभुत्व को खोना पड़ता है। यही कारण है कि रूपांतर की प्रक्रिया इतनी लम्बी और कठिन बन जाती है।

मन निस्तेज हो जाता है, क्योंकि मन का नीचे का आधार है, भौतिक मन जिसका धर्म है तमस् या जड़त्व, कारण जड़ तत्व का मूल धर्म है तामसिकता। जब लगातार या बहुत समय तक उच्चतर अनुभूतियाँ होती रहती हैं तब मन के इस भाग में थकावट आ जाती है। इस अवस्था से बचने का एक उपाय है समाधि। समाधि की अवस्था में शरीर को शांत बना दिया जाता है। भौतिक मन एक प्रकार की तंद्रा की अवस्था में आ जाता है, और आंतर चेतना को अपनी अनुभूतियाँ लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। इसमें असुविधा यह है कि समाधि

अनिवार्य हो जाती है और जाग्रत चेतना का प्रश्न हल नहीं होता, वह अपूर्ण ही रह जाती है।

ध्यान के समय यदि यह कठिनाई उपस्थित होती है कि सभी प्रकार के विचार मन में घुस आते हैं तो यह विरोधी शक्तियों के कारण नहीं होता, बल्कि यह मानव-मन के साधारण स्वभाव के कारण होता है। सभी साधकों को यह कठिनाई होती है और बहुतों के साथ तो यह बहुत लंबे समय तक लगी रहती है।

इससे छुटकारा पाने के कई उपाय हैं। उसमें एक यह है कि विचारों को देखा जाए और यह निरीक्षण किया जाए कि वे मानव-मन के किस स्वभाव को प्रकट कर रहे हैं, पर उन्हें किसी प्रकार की स्वीकृति न दी जाए और उन्हें तब तक दौड़ते रहने दिया जाए जब तक वे स्वयं ही थककर रूक न जाएँ। इसी उपाय का अवलंबन लेने की सलाह विवेकानंद ने अपने राजयोग में दी है।

दूसरा उपाय है, इन विचारों को इस प्रकार देखना मानों वे अपने न हों, उनसे पीछे हटकर साक्षी पुरूष के रूप में अवस्थित होना और उन्हें अनुमति देने से इंकार करना। इस पद्धति में ऐसा मानते हैं कि विचार बाहर से, प्रकृति से आ रहे हैं और उन्हें ऐसे अनुभव करना होता है मानों वे पथिक हों जो मन के प्रदेश से हो होकर जा रहे हैं और जिनसे न तो अपना कोई संबंध हो और न जिनके विषय में अपनी कोई दिलचस्पी हो। इस तरह करने से प्रायः यह परिणाम होता है कि कुछ समय के बाद मन दो भागों में विभक्त हो जाता है, एक भाग तो वह होता है जो मनोमय साक्षी पुरूष होता है, जो देखा करता और पूर्ण रूप से अक्षुब्ध तथा अचंचल बना रहता है और दूसरा भाग वह होता है जो देखने को विवश होता है, प्रकृति-भाग होता है और जिसमें से होकर विचार आया-जाया करते हैं, या जिसमें विचरण करते हैं उसके बाद साधक इस प्रकति –भाग को भी निश्चल-नीरव या शांत करने का प्रयास कर सकता है।

एक तीसरा उपाय है, एक सक्रिय पद्धति भी है, जिसमें साधक यह देखने की चेष्टा करता है कि विचार कहाँ से आ रहे हैं और उसे यह पता चलता है कि वे उसके अंदर से नहीं बल्कि मानों उसके सिर के बाहर से आ रहे हैं अगर साधक उन्हें इस प्रकार आते देख ले तो फिर उनके भीतर घुसने से पहले ही उन्हें एकदम बाहर फेंक देना होता है। वह पद्धति संभवः सबसे अधिक कठिन है और इसे सब लोग नहीं कर सकते, पर इसे किया जा सके तो निश्चल-नीरवता प्राप्त करने का यह सबसे अधिक सीधा और सबसे अधिक शक्तिशाली मार्ग है।

यह आवश्यक है कि तुम अपने अंदर की अशुद्ध वृत्तियों को देखो और जानो! क्योंकि वे ही तुम्हारे दुःख के मूल हैं और अगर तुम्हें उनसे छूटकारा पाना हो तो तुम्हें उनका लगातार त्याग करना ही होगा।

परंतु तुम बराबर अपने दोषों और अशुद्ध वृत्तियों का ही चिंतन मत किया करो। बल्कि उसका चिन्तन करो जो तुम्हारा आदर्श है और यह विश्वास बनाए रखो कि जब यह तुम्हारा लक्ष्य है तब इसे पूरा होना ही होगा और यह अवश्य पूरा होगा।

बराबर दोषों और अशुद्ध वृत्तियों को देखते रहने से चित्त उदास होता है और श्रद्धा दुर्बल होती हैं। अपनी दृष्टि को किसी वर्तमान अंधकार की अपेक्षा आनेवाले प्रकाश की ओर अधिक लगाओ। श्रद्धा, प्रसन्नता और अंतिम विजय में विश्वास- ये सब चीजें ही सहायता करती हैं, ये प्रगति को अधिक सहज और तीव्र बनाती हैं।

जो अच्छी अनूभूतियाँ तुम्हें प्राप्त होती हैं उनका अधिक-से-अधिक लाभ उठाओ। वैसी एक भी अनुभूति इन पतनों और विफलताओं से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर जब ऐसी अनुभूति बंद हो जाए तो उसके लिए अनुताप मत करो या उसके कारण निरुत्साहित मत हो जाओ, बल्कि भीतरसे शांत बने रहो और यह अभीप्सा करो कि वह फिर से एक अधिक स्थायी रूप ग्रहण करके आये तथा और भी अधिक गंभीर और पूर्ण अनुभूति की ओर ले जाए।

सर्वदा अभीप्सा करो, पर करो अधिकाधिक अचंचल रहते हुए तथा भगवान की ओर अपने-आपको सरल और संपूर्ण रूप में अद्घाटित करते हुए।

अधिकाशं मनुष्यों का निम्नतर प्राण भयंकर दोषों तथा ऐसी कुछ वृत्तियों से भरा रहता है जो विरोधी शक्तियों को प्रत्युत्तर देती हैं। अंतरात्मा को निरंतर उद्घाटित रखने, इन प्रभावों का अनवरत त्याग करते रहने, विरोधी शक्तियों के सभी सुझावों से अपने-आपको अलग रखने से तथा श्रीमाँ की शक्ति से स्थिरता, शांति, ज्योति और पवित्रता को अपने अंदर प्रवाहित होने देने से अंत में हमारा आधार विरोधी शक्तियों के घेरे से मुक्त हो जाएगा।

जिस बात की आवश्यकता है, वह है, अचंचल बने रहना, अधिकाधिक अचंचल बने रहना, इस सब प्रभावों को इस प्रकार देखना कि वे तुम्हारे कुछ नहीं हैं, ये कहीं बाहर से आकर घुस पड़े हैं, उनसे अपने-आपको अलग करना, इन्हें अस्वीकार करना तथा भागवत शक्ति पर विश्वास बनाये रखना। अगर तुम्हारा हृतपुरूष भगवान को पाने की इच्छा करता हो, तुम्हारा मन सच्चा हो और निम्न प्रकृति तथा समस्त विरोधी शक्तियों से मुक्त होना चाहता हो और अगर तुम अपने हृदय में श्रीमाँ की शक्ति का आवाहन कर सको तथा अपनी व्यक्तिगत शक्ति की अपेक्षा उसी पर अधिक निर्भर कर सको तो अंत में विरोधी शक्तियों का यह घेरा नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा और उसका स्थान शांति और सामर्थ्य ग्रहण कर लेंगे।

निम्न प्रकृति अज्ञानमयी और आदिव्य है, यह स्वयं ज्योति और सत्य का विरोध नहीं करती, बस यह उनकी ओर खुली हुई नहीं है। परन्तु जो विरोधिनी शक्तियाँ हैं वे केवल अदिव्य ही नहीं, वरन् दिव्यता की शत्रु हैं, वे निम्न प्रकृति का उपयोग करती हैं, उसे कुमार्ग में ले जाती हैं, उसे विकृत वृत्तियों से भर देती हैं तथा इस उपाय के द्वारा वे मनुष्य को प्रभावित करती और लेने की या कम-से-कम से पूरी तरह अपने वश में कर लेने की चेष्टा करती हैं।

सब प्रकार की अतिरंजित आत्मनिंदा से, यहाँ तक कि उसके अंदर प्रवेश करने और उसे अपने अधिकार में

कर, कठिनाई या विफलता का बोध होने पर अवसन्न होने की आदत से अपने-आपको मुक्त करो। ये सब भाव वास्तव में तनिक भी सहायता नहीं करते, बल्कि उल्टे ये एक बहुत बड़ी बाधा हैं और हमारी उन्नति को रोकते हैं। ये सब धार्मिक मनोवृत्ति के परिचायक हैं, यौगिक मनोवृत्ति से इसका कुछ भी संबंध नहीं।

योगी को चाहिए कि वह प्रकृति के सारे दोषों को इस दृष्टि से देखे कि ये निम्न प्रकृति की क्रियाएँ हैं और ये सबके अंदर होती रहती हैं, और भागवत शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हुए स्थिरता व दृढ़ता के साथ इनका नित्य निरंतर त्याग करता रहे ,पर न तो किसी प्रकार की दुर्बलता या अवसाद या अवहेलना के भाव को, न किसी प्रकार की उत्तेजना, अधीरता या उग्रता के भाव को अपने अंदर आने दे।

-पूर्व प्रकाशित - कर्मधारा 1996 –अंक 1(5)

शरीर और उच्चतर चेतना

जब शरीर उच्च चेतना की ओर खुलता है तब वह चमत्कार प्रस्तुत कर सकत है। एक बार की बात है तब मैं चौदह वर्ष की थी। मेरे दिमाग में एक विचार आया कि क्या मैं बड़े हॉल को तीन कदमों में नाप सकती हूँ और जब मैंने ऐसा संकल्प लिया तो सचमुच मैंने तीन कदमों में बड़े हॉल को नाप लिया। हर बात अपने में मूल्य रखती है लेकिन उसका मूल्य तभी है जब वह तुम्हें अपने अन्दर कुछ नया खोज पाने में मदद करें,तुम्हारी सत्ता के सत्य को जानने में सहायक हो और तब तुम इस तथ्य को जानने लग जाते हो कि ससांर में इतने विरोध,विषमताएँ क्यों है। ये इसलिए हैं कि यहाँ जैसे वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति अपनी सही जगह पर नहीं है। मैं केवल भौतिक स्तर की बात नहीं कह रही हूँ, सत्ता की गहराई में यह तथ्य स्पष्ट होता है जैसे यहाँ सब कुछ गलत जगह (Mis Place) पर हो।

-श्रीमाँ

कर्मधारा-1988

अपनी गठरी टटोलें

-संकलन

दो आदमी यात्रा पर निकले! दोनों की मुलाकात हुई, दोनों का गंतव्य एक था तो दोनों यात्रा में साथ हो चले! सात दिन बाद दोनों के अलग होने का समय आया तो एक ने कहा:-भाई साहब! एक सप्ताह तक हम दोनों साथ रहे, क्या आपने मुझे पहचाना? दूसरे ने कहा:-नहीं, मैंने तो नहीं पहचाना।

पहला यात्री बोला:-महोदय मैं एक नामी ठग हूँ परन्तु आप तो महाठग हैं। आप मेरे भी गुरू निकले। दूसरा यात्री बोला "कैसे?" पहला यात्री - कुछ पाने की आशा में मैंने निरंतर सात दिन तक आपकी तलाशी ली, मुझे कुछ भी नहीं मिला। इतनी बड़ी यात्रा पर निकले हैं तो क्या आपके पास कुछ भी नहीं है? बिल्कुल खाली हाथ हैं। दूसरा यात्री - मेरे पास एक बहुमूल्य हीरा है और थोड़ी-सी रजत मुद्राएँ भी हैं।

पहला यात्री बोला:-तो फिर इतने प्रयत्न के बावजूद वह मुझे मिले क्यों नहीं? दूसरा यात्री मैं जब भी बाहर जाता- वह हीरा और मुद्राएँ तुम्हारी पोटली में रख देता था और तुम सात दिन तक मेरी झोली टटोलते रहे। अपनी पोटली देखने की तुमने जरूरत ही नहीं समझी तो फिर तुम्हें कुछ मिलता कहाँ से?" यही समस्या हर इंसान की है। आज का इंसान अपने सुख से सुखी नहीं है, दूसरे के सुख से दुखी है क्योंकि निगाह सदैव दूसरे की गठरी पर होती है! ईश्वर नित नई खुशियाँ हमारी झोली में डालता है परन्तु हमें अपनी गठरी पर निगाह डालने की फुर्सत ही नहीं है! यही सबकी मूलभूत समस्या है।

जिस दिन से इंसान दूसरे की ताक-झाँक बंद कर देगा, उसी क्षण सारी समस्या का समाधान हो जाएगा! हम सबको चाहिए कि हम अपनी अपनी गठरी टटोलें! जीवन में सबसे बड़ा गूढ मंत्र है स्वयं को टटोलें और जीवन-पथ पर आगे बढ़ें, सफलताएँ आप की प्रतीक्षा में है!

--साभार

श्रीअरविन्द और मृणालिनी देवी

-संकलन

हम सब जानते है कि श्रीअरविन्द के पिता कृष्णाधन घोष अपने सभी बच्चों को यूरोपियन बनाना चाहते थे। उन्हें श्रीअरविन्द से विशेष लगाव था, इसलिए उन्हें वे संपूर्ण रूप से 'इंग्लिशमैन' बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि शैशव से उनमें अंग्रेजी संस्कार आएँ इसलिए उन्होनें अपने इस नन्हे पुत्र के लिए अंग्रेज आया रखी थी। श्रीअरविन्द ने पहले अंग्रेजी में बातचीत करना सीखा। उनके लिये अंग्रेजी ही मातृभाषा जैसी बन गई थी। फिर जब वे सिर्फ पांच साल के थे तब उनको दो बड़े भाइयों के साथ देहरादून के लारेन्टो कोन्वेन्ट स्कूल में भर्ती करवा दिया गया। इस स्कूल में ज्यादातर अंग्रेज अधिकारियों के बच्चे ही पढ़ते थे। सात साल की उम्र में इंग्लेन्ड के मैन्चेस्टर के पादरी मि. ड्रयुएट के घर रहने का प्रबंध किया। अपने तीनों पुत्रो को पादरी को सौंपकर उन्हे कहा "इन तीनों बच्चों को अंगेज के बच्चों की तरह ही रखना। मैं तीनों को इंग्लिशमेन बनाना चाहता हूँ"।

श्रीअरविन्द ने चौदह साल तक इंग्लैन्ड में अभ्यास किया। आई. सी.एस की परीक्षा तो पास की लेकिन पदवी नहीं मिली। दरअसल उन्होंने जानबुझकर घुड़सवारी की परीक्षा नहीं दी। पहले बी.ए की परीक्षा पास की लेकिन उसकी भी उपाधि नहीं प्राप्त की क्योंकि इसके लिये एक साल और इंग्लैन्ड में रहना पड़ता था। इंग्लैन्ड में ही बड़ौदा के महाराज के साथ मुलाकात हुई और रत्नपारखी महाराजा ने इक्कीस साल के इस नवयुवा की तेजस्विता परख ली और पहली ही भेंट में अपने राज्य में अधिकारी के रूप में नियुक्ति दे दी। श्रीअरविन्द इंग्लैन्ड से सीधा बड़ौदा आये।

पौंडिचेरी को छोड़कर श्रीअरविन्द सबसे अधिक समय बड़ौदा में रहे। उनके जीवन के तीन प्रमुख कार्यों- स्वतंत्रता-संग्राम, सहित्य सर्जन और योगाभ्यास तीनों का शुभारंभ बड़ौदा में ही हुआ था। श्रीअरविन्द को वर्ष में एक महीने की छुट्टी मिलती थी, तब सबको मिलने के लिये वे कोलकता जाते थे। उनकी प्रखर देशभक्ति का प्रभाव विभिन्न समाज में पड़ने लगा था। मातृभूमि की मुक्ति का उनका कार्य और मातृभूमि के प्रति उनकी भक्ति से युवावर्ग बहुत प्रभावित था और वे बंगाल के नवयुवकों के आर्दश बन गाए थे। चारुचंद्र दत्त थाना डिस्ट्रिक्ट के कलेक्टर थे, बाद में वे श्रीअरविन्द के मित्र बन गए थे।

श्रीअरविन्द थाने में कोलकाता में उनके घर पर रहते थे लेकिन 1901 और 1902 में श्रीअरविन्द के साथ इतना घनिष्ठ परिचय नहीं हुआ था, लेकिन उन्होंने श्रीअरविन्द के बारे में बहुत कुछ सुना था और यह सब सुन कर उनको बहुत आश्चर्य भी हुआ था। उन्होंने संस्करण में लिखा है "डॉ. के.डी.घोष नखशिख युरोपियन बन गए

थे और अपने पुत्रों को भी ऐसा ही युरोपियन बनाना चाहते थे, उनका लड़का जो इंग्लैन्ड में बड़ा हुआ, वहाँ कि पढ़ाई की, उसने अपनी वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन सब कुछ हिन्दुस्तानी की तरह ही बना लिया है, इसके लिए हम सबको बहुत ही आश्चर्य होता था, लोग इस बारे में चर्चा करते थकते नहीं थे। समग्र बंगाल में विशेष रूप से युवाओं में श्रीअरविन्द के प्रति स्वदेश-प्रेम छा गया था।

हिन्दु धर्मग्रंथों के अध्ययन का प्रभाव श्रीअरविन्द ने बड़ौदा निवास के समय हरभियान हिन्दूधर्मशास्त्र एवं भराकाप्यो का गहरा अध्ययन किया। तब उन्हें हिन्दू संस्कृति की महानता का परिचय मिला। सुदुढ़ हिन्दु संस्कार जाग उठे और वे चुस्त रूप से उनका पालन करने लगे। उन्होंने बांगला साहित्य का भी अध्ययन किया। बंकिमचन्द्र का आनंद मठ उपन्यास भी पढ़ा। उनसे नारी का त्याग, समर्पण, सहनशीलता और नारी उदात्त चारित्र्य का परिचय मिला।

धर्मशास्त्र एवं उच्च प्रकार के साहित्यग्रंथ के अध्ययन द्वारा उन्हें ये प्रतीत हुआ कि हिन्दू संस्कार वाली स्त्री अपने स्वाभव के लिये सर्वस्व त्याग करने में हिचकिचाती नहीं। इसलिये उन्होंने सोचा कि शिक्षित और संस्कार संपन्न हिन्दू परिवार की कन्या के साथ विवाह करने से मातृभूमि की मुक्ति के उनके कार्य में कोई बाधा नहीं आयेगी। यह सोचकर उन्होंने बंगाली हिन्दू कन्या के साथ विवाह करने का निर्णय लिया।

वर्तमान पत्र में विज्ञापन:

श्रीअरविन्द 1901 की छूट्टियों में कोलकता आये। इस बार उन्होंने वर्तमान पत्र में सुयोग हिन्दू कन्या के साथ विवाह करने के लिए विज्ञापन दिया। इस विज्ञापन में उन्होंने शर्त रखी थी।

1. **कन्या हिदू संस्कार संपन्न परिवार की होनी चाहिए।**
2. **कन्या शिक्षित होनी चाहिए।**
3. **विवाह संपूर्ण हिन्दू विधि से ही किया जायेगा।**

कोलकत्ता की बंगबारी कालेलेक..... श्री गिरीशचंद्र बोस ने विज्ञापन पढ़ा। वे श्रीअरविंद के नाम और कार्य से परिचित थे और श्रीअरविन्द के पिता डॉ. कृष्णाधन घोष परिचय में आये थे। मृणालिनी के पिता भूपालचंद्र बोस उनके परम मित्र थे। उस समय भूपालचंद्र शिलोंग में कृषि विभाग में उच्च अधिकारी थे। उन्होंने भी इंग्लैन्ड की रॉयल एग्रीकल्वर कॉलेज में अभ्यास करके स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी, इसलिए वे संकुचित विचारधारा के नहीं थे। उस समय अधिकांश लोग, उच्च खानदानी लोग भी अपनी पुत्रियों को ... . कॉलेज में पढ़ाते नहीं थे।

परंतु भूपाल बाबू अपनी मीनु को बहुत पढ़ाना चाहते थे, इसलिये उन्होंने अपनी लाडली मीनु को अपने भाई

जैसे परम मित्र गिरीश बाबू के घर पर रखा था और मृणालिनी वहाँ रहकर ब्राझारोमाज़ की साथ पढ़ रही थी। वहाँ सुहनरा बो..... से उसकी मित्रता हुई जो जीवनपद्धति रही।

मृणालिनी:-

मृणालिनी का जन्म 6 मार्च 1887 में हुआ था। वह बहुत सुंदर थी। गौर वर्ण, शान्त, अत्यंत मृदु, आर्कषक चेहरा मानो कोई देवकन्या प्रथ्वी पर आ गई हो। उनका हाथ पवित्र नवजात शिशु जैसा कोमल और गुलाबी था। जब वह छोटा था तब उसकी सहेलियाँ कहा करती थी मीनु तेरी हथेलियाँ तो रुई से बनी हुई हैं, कितनी मुलायम हैं, हमारी जैसी नहीं हैं। यह सुनकर मीनु चिंतित हो जाती थी, उसको रोना आ जाता था। एक बार तो घर आकार गिरीश बाबू को कहा, चाचाजी मेरे हाथ रुई के बने के हुए हैं, इसलिए स्कूल की लड़कियाँ मुझे परेशान करती हैं, आप बाज़ार से उन लोगों के जैसे हाथ खरीद कर मुझे ला दो । यह सुनकर गिरीशबाबू जोर से हँसने लगे। बाद में उसको समझाया कि वास्तव में उनके हाथ तो अत्यंत कोमल और सुंदर हैं। ऐसी सरल, भोली और सुंदर थीं मृणालिनी।

गिरीशबाबू ने श्रीअरविन्द का विज्ञापन पढ़ा, विवाह की शर्त पढ़कर सोचा कि मृणालिनी के लिये सभी तरह से यह उपयुक्त है। उन्होंने भूपाल बाबु से सहमति लेकर श्रीअरविन्द को प्रस्ताव भेज दिया। विज्ञापन से श्रीअरविन्द के पास उच्च शिक्षित परिवारों की अनेक कन्याओं के लिये प्रस्ताव आने लगे थे। कई लोग तो अपना धन, पद का प्रलोभन देकर श्रीअरविन्द को अपनी पुत्री के लिए प्रसन्न करने का प्रयत्न भी कर रहे थे। लेकिन श्रीअरविन्द ने सभी प्रस्तावों को देखकर सबसे पहले मृणालिनी को पसंद किया।

गिरीशबाबू ने अपने घर मुलाकात का आयोजन किया, सौम्य, शान्त, स्वस्थ, चेहरे पर विशिष्ट आभा और मधुर आवाज़- यह सब देख चौदह वर्षीय मुग्ध बालिका के अंतर में श्रीअरविन्द के प्रति अकथ्य आकर्षण जग उठा और प्रथम मुलाकात में ही मृणालिनी के हृदय सिंहासन पर श्रीअरविन्द विराज़मान हो गये। उधर मृणालिनी का माधूर्य, सरलता और मृदुलता श्रीअरविन्द को स्पर्श कर गया और उन्होंने सहज ही मृणालिनी को पंसद कर लिया।

श्रीअरविन्द ने पहली बार एक ही कन्या देखी और पहली ही भेंट में विवाह निश्चित हो गया। उस समय श्रीअरविन्द की उम्र उन्नत्तीस साल की थी और मृणालिनी की चौदह साल की। उस समय बंगाल में चौदह साल की कन्या विवाह योग्य मानी जाती थी।

विवाह विधि:-

श्रीअरविन्द ने सादगी से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की थी इसलिये गिरीशबाबू ने इसका पूरा ध्यान रखा था। 30 अप्रैल 1902 के दिन विवाह का शुभ मुहुर्त निकला था।

विवाह का आयोजन गिरीशबाबू ने किया था। इस प्रोग्राम में जगदीशचंद्र बोस उनकी पत्नी अमला सिन्हा, व्योमकेश चक्रवर्ती, ऐसे बड़े-बड़े लोग उपस्थित थे। शिलोंग से मृणालिनी के पिता, उनकी माता, चाचा गिरीशचंद्र बोस, उनकी बहन ये सब लोग भी उपस्थित थे। किन्तु श्रीअरविन्द के परिवार में और ननिहाल में से भी कोई नहीं आया था। लगन विधि का आयोजन पूर्ण रुप से हिन्दु विधि से ही किया गया था। लेकिन जब ब्राह्मण पंडित जी को मालूम हुआ कि वर राजा विलायत में रहकर आये हैं तो उन्होंने कहा कि जब तक वर राजा की शुद्धि नहीं होगी तब तक यह विवाह नहीं होगा।

श्रीअरविन्द ने शुद्धिकरण कराने से इन्कार कर दिया, जैसे बरसों पहले उनके पिता डॉ.कृष्णधन ने इन्कार किया था। गिरीशबाबू ने पंडित जी की झोली रुपयों से भर दी, और पंडित जी ने बिना प्रायश्चित वर राजा को शुद्ध घोषित कर दिया। विवाह संस्कार पूर्ण रुप से हिन्दुविधि से संपन्न हो गया। इस विवाह के विषय में बंगाल के भद्रसमाज में बहुत चर्चा हो रही थी। सब लोग कहते थे, कन्या बड़ी भाग्यवान है कि उसे इतना विद्वान आई.सी. एस पति मिला। वायुदत्त लिखित हैं, हम कई बार परस्पर बात करते थे कि भूपालबाबू की ये नन्ही सी मीनु बहुत भाग्यशाली है, कि उसे पश्चिम की विद्या में पारंगत, ग्रीक, लेटिन, इंग्लिश, फ्रेन्च आदि भाषाओं में निपुण और अब जो संस्कृत और कई भारतीय भाषा सीख रहा है, ऐसा पति मिला। तब मृणालिनी भी ऐसे होशियार, गुणवान और प्रतिभा संपन्न पति को पाकर अपने को बहुत भाग्यशाली मानती थी।

विवाह के बाद:-

श्रीअरविन्द विवाह के बाद मृणालिनी को अपने ननिहाल देवघर में ले गये। उनके नानाजी श्रीयुत राजनारायण बोस और मामा योगेंद्र बोस श्रीअरविन्द को बहुत चाहते थे। वे लोग वहाँ कुछ दिन रहे। उस समय श्रीअरविन्द की माताजी स्वर्णलता देवी रोहिणी में रहती थीं। श्रीअरविन्द मृणालिनी को अपनी माता के पास ले गये, लेकिन माता पागलपन के उन्माद में रहती थीं, इसलिए वे नववधू का अच्छी तरह स्वागत नहीं कर पाईं। वे व्यक्तियों और वस्तुओं को बार-बार भूल जाती थीं। श्रीअरविद भी अपने छोटे भाई बहनों के साथ कुछ दिन रहे और वहाँ से बड़ौदा के नए राजा रुयाजीराव के निमंत्रण से मृणालिनी और अपनी बहन सरोजिनी को लेकर गये, उस समय महाराजा वहाँ थे। ननिहाल में वे करीब एक महीना रहे। ननिहाल से ही उन्होंने माधवरावजी को नया

मकान रखने के लिए पत्र लिखा था। लेकिन माधवराव ने श्रीअरविन्द के लिये नया मकान रखा नहीं। किन्तु जहाँ श्रीअरविन्द रहते थे, खासीराव जादव के बगंले में उपर की मंजिल पर ही श्रीअरविन्द की सपरिवार रहने की व्यवस्था चालू रखी। आज जहाँ श्रीअरविन्द निवास है, उसी मकान के ऊपरी हिस्से में ही श्रीअरविन्द की रहने की व्यवस्था की गई।

बड़ौदा में परिवारिक जीवन:-

श्रीअरविन्द मृणालिनी और बहन सरोजिनी को लेकर ननिहाल से 1 जुलाई 1901 को बड़ौदा आ पहुँचे आये थे, इसलिए खासीराव जादव, उनके भाई माधवराव जादव, के.जी.देशपांडे देवधर, सरदार मजुमदार, गोंविद सखाराम सरदेसाई, कॉलेज, के कई प्रोफेसर और गायकवाड सरकार के कई अधिकारियों ने उन लोगों का बड़ा शानदार स्वागात किया और नवदंपत्ति के लिये स्वागत समारोह का आयोजन किया। सब लोगों ने बहुत खुशी व्यक्त करके अभिनंदन किया। बड़ौदा में श्रीअरविन्द का परिवारिक जीवन शुरू हुआ। थोड़े दिनों

में श्रीअरविन्द के छोटे भाई बारीन्द भी आ गये। उनके लिये नीचे एक कमरा रखा गया।

मृणालिनी पहली बार गुजरात आई थीं। गुजरात का वातावरण बिल्कुल अपरिचित था लेकिन श्रीअरविन्दके सानिध्य में स्वजनों और कुटुम्बियों की दूरी महसुस नहीं होती थी। उस समय मृणालिनी करीबन 10 महीना श्रीअरविन्द के साथ रहीं। यह श्रीअरविन्द के साथ रहने का उनका सबसे लम्बा समय था। उसके बाद तो श्रीअरविन्द के साथ दो महीने भी रहने का मौका नहीं मिला। उस समय श्रीअरविन्द ने योगाभ्यास शुरु नहीं किया था। वे कॉलेज के प्रोफेसर थे। श्रीअरविन्द के साथ रहकर मृणालिनी को ये समझ में आने लगा था कि "उसका पति सामान्य बंगाली युवकों जैसा नहीं है। परिवारजनों की सुख सुविधा का ख्याल रखना, उत्तम वस्तुओं से घर को सजाना, अपना आनंद उपभोग में व्यस्त रहना, इसमें से कुछ भी उनका स्पर्श नहीं करता था।

उनको न तो संपत्ति पाने की इच्छा थी, न तो सत्ता की भूख थी, न तो उन्हें आगे आने की महत्त्वाकांक्षा थी, न तो महान बनने की कोई इच्छा थी। एकदम निराला था उनका व्यक्तित्व। अत्यंत मितभाषी, अंतर्मुखी और मृदु होते हुए भी दृढ़ व्यक्तित्व ऐसे असाधारण पति के सान्निध्य में मृणालिनी अधिक से अधिक रहना चाहती थीं लेकिन बहन सरोजिनी की उम्र और कठोर स्वभाव उनके जीवन के ये श्रेष्ठ और मधुर दिनों को कटु बना देते थे।

श्रीअरविन्द ने अपनी छोटी-बहन सरोजिनी को बहुत लाड़ प्यार से रखा था। दोनों छोटे भाई बहन को माता पिता का प्यार नहीं मिला था। माँ पागल हो गई थीं और पिताजी शराब के नशे में डूबे रहते थे। ऐसी स्थिति में सरोजिनी और बारीन्द्र बड़े हुए, इसलिए उनके स्वभाव में कुछ कमी रह गई थी।

सरोजिनी का स्वभाव जिद्दी और कोध्री हो गया था। श्रीअरविन्द अपने प्रेम से उसकी ये कमियाँ दूर कर रहे थे। श्रीअरविन्द ने उनके आवास की समुचित व्यवस्था की थी और नियमित रुप से पैसे भी भेजते थे। सरोजिनी को बार-बार पत्र भी लिखते रहते थे। सरोजिनी ने एक पत्र में श्रीअरविन्द को पूजा के दिनों में आने को लिखा था तब इसके उत्तर में उन्होंने ने लिखा कि इतना जल्दी तुम्हारे पास आना मेरे लिये संभव नहीं, यदि संभव होता को कल ही वहाँ आने के लिये निकल पड़ता। सरोजिनी की अंग्रेजी अच्छी थी, इसके बारे में भी श्रीअरविन्द बहुत ध्यान रखते थे।

एक पत्र में लिखते हैं, "तुम्हारे पत्र के आधार पर इतना अनुमान कर सकता हूँ कि तुमने अंग्रेजी में अच्छी प्रगति की है। तुम्हारा अंग्रेजी का ज्ञान अब तेजी से आगे बढ़ेगा, ऐसी मुझे आशा है। उसके बाद तुम्हें जो कहना होगा, वह मैं अपनी विशिष्ट शैली में कहूँगा"।

इस तरह अब तक श्रीअरविन्द का पूरा का पूरा स्नेह सरोजिनी को ही मिलता था। अब उसे ऐसा लगने लगा था कि उसके प्यारे दादा के प्रेम का बँटवारा हो गया है। मृणालिनी ने अधिकांश प्रेम ले लिया है इसलिए वह मृणालिनी का बहुत ही तिरस्कार करती थी, बार-बार अपमनित करती थी। मृणालिनी अत्यंत मृदु और शान्त

स्वभाव की थी।

सरोजिनी के प्रति कभी भी प्रतिकार नहीं करती थी। वो अभी ना सिर्फ़ चौदह साल की उम्र थी बल्कि मायके में बहुत लाडप्यार से बड़ी हुई थी। उसने कठोर शब्द कभी सुने ही नहीं थे। कटुता का कभी भी अनुभव नहीं हुआ था। अभी तक सब लोगों की स्नेह भाजन ही थी।

वह एक गंभीर और कुशल गृहिणी थी। मृणालिनी की मनोव्यथा को उन्होंने पहचान लिया और मृणालिनी को बहुत ही सहारा दिया। वे उसको मार्गदर्शन देते रहे। मृणालिनी को प्रेम, वात्सल्य और माता जैसी ममता चंद्राबाइ से मिली। इसके सहारे वह सरोजिनी का कटुव्यवहार सहन कर पाई।

मृणालिनी को दूसरा सहारा मिला, महाराजा रायाजी राव की पुत्री इन्दिरा राजे का महाराजा अपने दोनों बच्चों को अंग्रेजी सीखने के लिये श्रीअरविन्द के घर पर भेजते थे। श्रीअरविन्द को महाराजा इतना सम्मान देते थे कि अपने बच्चों को पढ़ाने के लिये श्रीअरविन्द को राजमहल में नहीं बुलाते थे। बल्कि बच्चों को वहाँ भेजते थे।

अंग्रेजी पढ़ने के लिये इन्दिरा बारबार श्रीअरविन्द के घर पर आती थी , इससे मृणालिनी का परिचय उससे गाढ़ा होने लगा और बाद में दोंनो सहेली जैसी बन गईं। इन्दिरा का आकर्षक व्यक्तित्व, उसका राजवी प्रभाव और बड़प्पन से सारोजिनी बहुत प्रभावित हो गयी थी और उसकी उपस्थिति में वह ज्यादातर आती ही नहीं थी, और बहुत कम बोलती थी। इन्दिरा की माता महाराणी चिमनाबाइ के पास भी इन्दिरा मृणालिनी को ले जाया करती थी। महाराणी बहुत व्यवहारकुशल, वात्सल्यमयी थीं। उनके पास से मृणालिनी को बहुत स्नेह मिला, इससे मृणालिनी को सांत्वना और शांति मिलती थी और मन का बोझ हल्का हो जाता था। महारानी ने मृणालिनी को बहुत कुछ सिखाया भी।

इस तरह दस महीने तो बहुत जल्दी से बीत गये। मृणालिनी के जीवन का यह स्वर्णकाल था।पति का सानिध्य मिला उनके साधु चरित-व्यक्तित्व का परिचय मिला। उस समय तो उसकी उम्र बहुत छोटी थी, समझ-शक्ति भी पूरी तरह विकसित नहीं हुई थी। पति की गहनता,विद्वता को समझने की दृष्टि भी पूरी खुली नहीं थी। बाह्य-समाज के संस्कारों से और आधुनिक विचारधारा के प्रभाव से दृष्टि भौतिकता में सीमित थी। इसलिए वह श्रीअरविन्द के असाधारण व्यक्ति को पूरी तरह नहीं समझ पाईं। तो भी उनमें हिन्दु कुटुम्ब के संस्कार थे इसलिए पति ही उसके लिये सर्वस्थ थे। पति को वह अपना भगवान मानती थीं और उनके चरणों में उसने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था।

श्रीअरविन्द का सानिध्य, उनकी सेवा करने का मधुर स्वप्न लेकर वह बड़ौदा आई थीं। किन्तु वह मधुर स्वपन पूरी तरह से साकर ना हो पाया तो भी श्रीअरविन्द साथ में थे इसलिए सब कुछ सहन कर लिया। यह

समय अत्यंत तेजी से बीत गया।

अगली छुट्टियों में जब श्रीअरविन्द का कोलकाता आना हुआ तब वे अपने साथ सबको ले आये। मृणालिनी का फिर कभी बड़ौदा आना नहीं हुआ। मृणालिनी के लिये अब वियोग के लम्बे दिन शुरू हो गये। श्रीअरविन्द छुट्टियों में कोलकाता आते थे और तब मृणालिनी को अपने पास रहने के लिय बुला भी लेते थे। लेकिन वे कांग्रेस के कार्य में, स्वंतत्रता संग्राम के आयोजन में इतने व्यस्त रहते थे कि मृणालिनी को उनके साथ बात करने का भी मौका नहीं मिलता था, इसलिए श्रीअरविन्द उनको वापस अपने पिता के पास भेज देते थे । लेकिन वियोग के इस दीर्घकाल खंड में मृणालिनी और श्रीअरविन्द के बीच पत्रव्यवहार होता रहा। बड़ौदा से और कोलकाता से श्रीअरविन्द मृणालिनी को पत्र द्वारा व्यावहारिक एवम् आध्यात्मिक मार्गदर्शन देते रहे।

श्रीअरविन्द ने एक-दो पत्र अंग्रेजी में लिखे थे, लेकिन अधिकांश बांग्ला में थे। मृणालिनी के सभी पत्र बांग्ला में ही थे। दुर्भाग्य से मृणालिनी ने श्रीअरविन्द को जो पत्र लिखे थे, वे उपलब्ध नहीं हैं, उसके कुछ अंश मिले हैं, लेकिन श्रीअरविन्द के द्वारा मृणालिनी को लिखे हुए पत्र जो मृणालिनी ने अपनी पेटी में सुरक्षित रखे थे, उसमें से कई पत्र अलीपुर बोम्ब केस में श्रीअरविन्द की घर पकड़ के दौरान पोलिस एजेन्ट ले गया था। और कोर्ट में पेश किया था, वही गुप्त पत्र ब्रिटिश सरकार ने प्रकट कर दिये, ये तेरह पत्र उपलब्ध हैं। श्रीअरविन्द के पत्र नाम से बांग्ला में पुस्तक भी प्रकाशित हुई है।

इस बात की गाँठ बाँध लो कि श्रीमाँ के ऊपर पूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ों तो चाहे जैसी परिस्थिति और कठिनाई हो, चाहे जितना समय लगे, तुम निश्चित रूप से लक्ष्य तक पहुँच पाओगे, कोई बाधा, विलम्ब या विपरीत स्थिति अन्तिम सफलता को बिगाड़ न पायेगी।

- श्रीअरविन्द

विनय

-शम्सुद्दीन

विनय जीवन में सफलता की कुंजी है। मनुष्य कितना भी बुद्धिमान, गुणी और धनवान हो किन्तु यदि उसमें विनय का अभाव है तो वह न तो स्वयं सुख-शांति से रह सकता है और न ही दूसरों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है। विनयशील व्यक्ति सदाचारी होता है वह स्वार्थ की बजाय परमार्थ की बातें अधिक सोचता है तथा अपनी मधुर वाणी एवं नम्र व्यवहार से मानव मात्र के हृदय को जीत लेता है।

पढ़-लिख जाने पर जो लोग सोचते हैं कि उन्होंने संसार का सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया अतः अन्य लोग उनके सामने झुकें तथा उनकी प्रशंसा करें, ऐसे लोग वास्तव में ज्ञानी नहीं कहे जा सकते। जो सचमुच विद्वान हैं वह न तो अपने ज्ञान का ढिंढोरा पीटता फिरता है और न ही प्रशंसा सुनने की आकांशा रखता है। उसका विनम्र व्यवहार ही उसके तत्व ज्ञानी होने का प्रमाण दे देता है और लोग अपने आप ही उसके सामने श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ लोग धन संग्रह करके अपने को अमीर और उच्च वर्ग का व्यक्ति समझने लगते हैं। वे निर्धनों को हीन दृष्टि से देखते हैं तथा उनके प्रति अनुदार एवं अमानवीय व्यवहार करते हैं। धन- संपदा के रहते हुए भी ऐसे लोगों से बढ़कर कोई दूसरा निर्बल नहीं। इसके विपरीत वह व्यक्ति जो दिन भर कड़ा परिश्रम कर जो रोजी- रोटी कमा के लाता है, दरवाजे पर किसी दीन दुखी और भूखे को देख उसका कुछ हिस्सा उदारतापूर्वक उसे दे डालता है, वास्तव में हृदय का महान धनी है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह परिवार हो अथवा समाज, नौकरी हो अथवा धंधा, नागरिक जीवन हो अथवा प्रशासन, विनयपूर्वक अपने को छोटा समझकर चलनेवाला व्यक्ति ही लाभान्वित होगा। इसीलिए कहा गया है-

'चींटी बनकर शक्कर खाओ,
हाथी बनकर लकड़ी ही हाथ लगेगी'।

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1980 2 (7)

भारतीय धर्म का मर्म

-डॉ.जे.पी.सिंह

समस्त भारतीय धर्म का मूल विचार एक ऐसा विचार है जो सर्वोच्च मानव चिंतन में सर्वत्र समान रुप से पाया जाता है। इहलोक में जो कुछ भी है उस सबका परम सत्य है एक 'पुरूष' या एक 'सत्' जो, यहाँ हम जिन मानसिक और भौतिक रुपों के संपर्क में आते हैं उन सबसे परे है।

मन, प्राण और शरीर से परे एक अध्यात्म-सत्ता एवं आत्मा है जो सभी स्रांत वस्तुओं को और अनंत को अपने अदंर धारण किये हुए है, सभी सापेक्ष वस्तुओं से अतीत है, एक परम निरपेक्ष सत्ता है जो सभी नश्वर पदार्थों को उत्पन्न और धारण करती है एकमेव सनातन है। एकमेव परात्पर विश्वव्यापी आदि और शाश्वत भगवान या दिव्य सत्, चित् शक्ति और आनंद ही वस्तुओं का आदि, स्त्रोत, आधार और अंतरवासी है. जीव, प्रकृति और जीवन इस आत्म-सचेतन नित्य-सत्ता और इस चिन्मय सनातन की एक अभिव्यक्ति या इसका एक आंशिक रुप मात्र हैं।

परंतु सत्ता के इस सत्य को भारतीय मन बुद्धि के द्वारा चिंतित केवल एक दार्शनिक कल्पना, धार्मिक सिद्धांत या अमूर्त तत्व के रूप में ही नहीं ग्रहण किया था। यह कोई ऐसा विचार नहीं था जिसमें विचारक अपने अध्ययन के समय तो निरत रहे पर वैसे जीवन के साथ जिसका कोई क्रियात्मक सम्बन्ध न हो। यह कोई चेतना का गुह्य उन्नययन नहीं था जिसकी जगत और प्रकृति के साथ मनुष्य के व्यवहारों में उपेक्षा की जा सकती हो। यह तो एक जीवतं आध्यात्मिक सत्य था, एक सत्ता, शक्ति एवं उपस्थिति थी, जिसकी खोज सभी लोग अपनी क्षमता की मात्रा के अनुसार कर सकते थे और जिसे जीवन के द्वारा तथा जीवन परे सहस्त्रों मार्गों से आयत्त कर सकते थे। इस सत्य को जीवन में जीना होता था, यहाँ तक कि विचार, जीवन तथा कर्म को परिचालित करने वाली प्रमुख भावना बनाना होता था.

सब रुपों के पीछे विद्यमान किसी परम वस्तु या परम पुरुष को इस प्रकार स्वीकार करना और खोजना ही भारतीय धर्म का एकमात्र सार्वजनीन मूलमन्त्र रहा है, और यदि इसने सैकड़ों आकार ग्रहण कर लिये हैं तो इसका कारण ठीक यही है कि यह इतना अधिक जीवन्त था। केवल अनंत ही स्रांत की सत्ता की सार्थकता सिद्ध करता है और स्रांत अपने-आप में कोई पूर्णत: पृथक मूल्य या स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं रखता।

जीवन, यदि यह कोई भ्रम नहीं है तो, एक दिव्य लीला है, अनंत की महिमायी एक अभिव्यक्ति है। अथवा यह एक साधन है जिससे अगणित रूपों और अनेक जीवनों के द्वारा प्रकृति के अंदर विकसित होता हुआ जीव प्रेम, ज्ञान, श्रद्धा, उपासना और कर्मगत ईश्वरोन्मुख संकल्प के बल पर इस परात्पर पुरूष और इस अनंत सत्ता के

पास पहुँच सकता है, इसे स्पर्श और अनुभव कर सकता है तथा इसके साथ एकत्व लाभ कर सकता है. यह दिव्य आत्मा या यह स्वयंभू पुरुष ही एक मात्र परम सद्वस्तु है, और अन्य सभी चीजें या तो प्रतीतियां मात्र हैं या उस पर आश्रित होने के कारण ही वास्तविक हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि आत्मोपलब्धि और ईश्वरोपलब्धि ही जीवनधारी और विचारशील मनुष्य के महान कार्य हैं। समस्त जीवन और विचार अंततोगत्वा आत्मोपलब्धि और ईश्वरोपलब्धि की ओर प्रगति करने के साधन हैं।

भारतीय धर्म ने परमसत्य-सम्बन्धी बौद्धिक या पारमार्थिक विचारों को कभी एकमात्र केन्द्रीय महत्त्व की वस्तु नहीं समझा। किसी भी विचार या किसी भी आकार के रुप में उस सत्य का अनुसरण करने को ही वह एकमात्र आवश्यक वस्तु मानता था। एक, मत या संप्रदाय मनुष्य की वास्तविक आत्मा को विश्वात्मा या परमात्मा के साथ अविभाज्य रुप में एक समझ सकता था। दूसरा, मनुष्य को सारतत्त्व में तो भगवान के साथ एक लेकिन प्रकृति में उससे भिन्न मान सकता था। तीसरा, ईश्वर, प्रकृति और मनुष्यरथ व्यष्टि-जीव को सत्ता की तीन नित्य-भिन्न शक्तियों के रुप में स्वीकार कर सकता था। परंतु सब के लिए आत्मा का सत्य एक समान अचल-अटल था, क्योंकि भारतीय द्वैतवादी के लिए भी ईश्वर ही परम आत्मा और सद्वस्तु है जिसमें और जिसके द्वारा प्रकृति और मनुष्य का कुछ भी अर्थ और महत्त्व नहीं रह जायेगा।

आत्मा, विश्व प्रकृति (चाहे उसे माया कहा जाय अथवा प्रकृति या शक्ति) और जीवधारी प्राणियों में विद्यमान अतंरात्मा, अर्थात् जीव-ये तीन सत्य हैं जिन्हें भारत के सब धार्मिक संप्रदाय और परस्पर विरोधी धार्मिक दर्शन सर्वसामान्य रुप से अंगीकार करते हैं। इस बात को भी सभी स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की आतंरिक अध्यात्म सत्ता की, उसके अंदर की दिव्य अंतरात्मा की प्राप्ति, और ईश्वर या परमात्मा या सनातन ब्रह्म के साथ मनुष्य की अंतरात्मा का किसी-न-किसी प्रकार का सजीव एवं ऐक्यसाधक संपर्क या पूर्ण एकत्व ही आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने की शर्त है।

यब मार्ग हमारे सामने खुला है कि हम भगवान की कल्पना और अनुभूति 'निर्वैयक्तिक' 'निरपेक्ष' एवं 'अनंत' के रुप में करें अथवा हम उनके पास उन्हें एक विश्वातीत और विश्व-व्यापी सनातन 'पुरुष' मान कर पहुँचे और इसी रूप में उन्हें जानें तथा अनुभव करें, परंतु उनके पास पहुँचने का हमारा मार्ग चाहे कोई भी क्यों न हों, आध्यात्मिक अनुभव का एकमात्र प्रधान सत्य यह है कि भगवान भूतमात्र के हृदय और केन्द्र में विराजमान हैं और भूतमात्र उनके अंदर अवस्थित है और उन्हें प्राप्त करना ही महान आत्म-उपलब्धि हैं। धर्ममतसंबंधी विश्वासों के मतभेद भारतीय मन के लिए सबमें विद्यमान एक ही आत्मा और परमेश्वर को देखने के अलग-अलग मार्गें से अधिक कुछ नहीं है।

आत्म-साक्षात्कार ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है, अन्तरस्थ परमात्मा की ओर खुलना, अंनत में निवास

करना, सनातन को खोजना और उपलब्ध करना, भगवान के साथ एकत्व प्राप्त करना- यही धर्म का सर्वसामान्य विचार और लक्ष्य है, यही आध्यात्मिक मोक्ष का अभिप्राय है यही वह जीवन्त सत्य है जो पूर्णता और मुक्ति प्रदान करता है। उच्चतम आध्यात्मिक सत्य और उच्चतम आध्यात्मिक लक्ष्य का यह क्रियात्मक अनुसरण ही भारतीय धर्म का एकीकारक सूत्र है और यही, उसके सहस्त्रों रुपों के पीछे, उसका एक अभिन्न और सर्वसामान्य सारतत्त्व है।

प्रत्येक धर्म ने मानवजाति की सहायता की है। मर्तिपूजा ने मनुष्य में सौन्दर्य की ज्योति को, उसके जीवन की विशालता और ऊँचाई को, बहुमुखी पूर्णता के प्रति उसके लक्ष्य को परिवर्धित किया है, ईसाइयत ने उसे दिव्य प्रेम और दयालुता की पर्याप्त सूक्ष्म दृष्टि प्रदान की है, बौद्ध धर्म ने उसे अधिक बुद्धिमान, सौम्य और पवित्र होने का उदात्त मार्ग दिखलाया है, यहूदी और इस्लाम धर्म ने सिखाया है कि कर्म में दृढ़तापूर्वक निष्ठावान कैसे बनें और भगवान के प्रति उत्साहपूर्ण समर्पण कैसे किया जायें, हिन्दू धर्म ने उसके सम्मुख विशालतम और गूढ़तम आध्यात्मिक संभावनाएँ उदघाटित की हैं।

जीवन एक गति है

जीवन एक गति है, वह एक प्रयास है, आगे की ओर बढ़ना है, पर्वत पर आरोहण है, ऊँची जानकारियों तथा भावी सिद्धियो के प्र ं ति अभियान है। विश्राम करने की इच्छा करने से अधिक खतरनाक और कोई चीज नही है। संच्चा विश्राम भागवत कृ पा पर पूर्ण विश्वास, कामनाओ कं अभाव और अहंकार के ऊपर विजय है।

श्रीमाँ

पुर्नजन्म

-श्रीअरविन्द

भागवत आनन्द हमारे भीतर शीघ्र नहीं होता है परिपूर्ण,
न ही एक जीवन के साथ हमारा होता है अन्त हमसें आसीन हैं हमारी आत्माएँ
हममें आसीन हैं हमारी आत्माएँ चिरकाल पर्यन्त
एवं सुनिश्चित है एक अनन्त आनन्द।
हमारी आत्माएँ एवं स्वर्ग हैं एक समान महत्तर
और एक तिथिविहीन जीवन के हैं हम अधीश्वर,
महाप्रकृति के अनन्त बीज, अपरिमित साँचे,
वे नहीं हुए थे पृथ्वी पर निर्मित,
न ही वे करते है पृथ्वी पर अपनी भस्मों की वसीयत,
किन्तु अपने में ही हैं वे पूर्ण समहित।
एक चिरकालीन भविष्य भरपूर है तेरे इस आघात तले,
एक चिरन्तर आतीत का बालक।
पुरानी स्मृतियाँ पुनः आती हैं समीप, आक्रान्त करते हैं पुरानी स्वप्न,
वे खोए हुए लोग जो कभी रहे हैं हमारे परिचित,
दंतकथाएं एवं चलचिन्न, किन्तु उनकी आकृतियाँ, हमें करती हैं भ्रमित-
वे खड़े हैं कहीं एकाकी एवं रिक्त।
तो भी हमारे सभी स्वप्न एवं आशाएँ हैं स्मृतियों के खजाने,
हैं भविष्यवाणियाँ जिनका हम लगाते हैं गलत अर्थ,
किन्तु वह जिसने जीवन अथवा दृश्यावलियों का किया हो मूल्यांकन
उनका अनगिन स्वर्ग कर सकते हैं वर्णन।
समय है एक प्रबल समझौता भविष्य एवं वर्तमान
अतीत में रहे थे जीवन्त
वे सब हैं एक प्रतिरूप जिन्हें हमारे संकल्पों ने
त्रिविध योजनाओं में किया सूत्रबद्ध।
हमारा अतीत जिसे हम गए हैं भूल, है सर्वदा हमारे समीप,
हमारे जन्म एवं तत्पश्चात मरण्
पूर्व से ही हैं पूर्णतः निष्पादित। एक श्वांसहीन शिखर तक

कभी-कभी हमारी आत्माएँ करती हैं आरोहण,
जब मन पुनः आता है पाकर मदद क्योंकि फिर उमड़ आता है
समय का सिन्धु विराट
वह फैल जाता है हमारे चहुँ ओर अपने अनन्त प्रवाह,
अपनी भव्य सुरसंगति के साथ,
और मन के इस आवरण के बावजूद आत्मा
निहारती है यदा-कदा और देखती है
वे विगत युग कल्प एवं अजन्मी शताब्दियाँ,
जिन्हें हमारे जीवन नें पाया था विरासत में
यह आत्मा देखती है लहर आलोड़ित क्षेत्रों से निष्कासित सिन्धु-
अस्पष्ट गहराइयों से उछलते हुए ऊपर
जहाँ अब खड़ा है हिमालय, बाढ़ग्रस्त प्रवाह विशाल
देखती है अनुमान करने हेतु अधिकांश संसार
अथवा हमारी पृष्ठभूमि में यह बुनावट का उलझाव भी गया है सुलझ
और इसके धागों पर हम डालते हैं दृष्टि,-
सितारों की गतियाँ विगत, वे दृश्य जो दीर्घकाल से कर रहे हैं परिभ्रमण
कालचक्र में अतिदूरगामी दिवस।

-महानिशा का तीर्थयात्री

श्रीअरविन्द की प्रासंगिकता

-डॉ. जे. पी.सिंह, अध्यक्ष

भारत वर्ष की ऋषि परम्परा के प्रतीक पुरुष और आधुनिक युग के मनीषियों में अन्यतम श्रीअरविन्द (1872-1950) की गहन गम्भीर प्रतिमा का प्रत्येक आयाम उच्चतम पर्वत शिखर के समान है अत: किसी एक को छोटा बड़ा कहना उपयुक्त नहीं है। दार्शनिक, योगी, कवि, समीक्षक, राजनीतिवेत्ता, समाजशास्त्री, मनोविज्ञान शास्त्री आदि जिस रुप में भी उन्हें देखें, वह मानवीय मेधा के अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत करते दीखते हैं क्योंकि उनकी विशिष्ट चिन्तन धारा प्रत्येक रुप में भीतर-भीतर प्रवाहमान है। युवा पीढ़ी के लिए वे दार्शनिक हैं, वरिष्ठों के लिए राजनैतिक क्रांतिकारी, विदेशों में उनकी पहचान आध्यात्मिक वैज्ञानिक के रुप में है। जो लोग आध्यात्मिकता में रूचि नहीं रखते उन्हें 'सावित्री' ने बहुत प्रभावित किया।

उनका दर्शन केवल तर्कसिद्ध वैचारिक क्रीड़ा नहीं है अपितु साधना से अर्जित अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। उन्होंने बारम्बार आग्रह करने पर एक शिष्य साधक को लिखा था कि मैं कभी दार्शनिक नहीं था, यद्पि मैंने दर्शन लिखा अवश्य है, मैंने अपनी योग साधना में जो कुछ अनुभव किया था, उसे तर्क और बुद्धि सम्मत रुप में प्रस्तुत भर किया है लेकिन यह दार्शनिक हो जाना तो नहीं है। वस्तुत: उनका दर्शन उनकी योग साधना का सिद्धान्त शास्त्र है जबकि उनकी योग साधना उनके दर्शन का व्यावहारिक रुप। उनके योग एवं दर्शन को अलग-अलग करके देखना कठिन है।

'योग समन्वय' उनके योग का आधार ग्रंथ है तो 'दिव्य जीवन' उनके दर्शन का। मूलरूप से अंग्रेजी में लिखित श्री अरविन्द का दर्शन सर्वथा भारतीय है। उसका सम्बंध वेद, उपनिषद और गीता से है लेकिन साथ ही ज्ञान विज्ञान की वह उपेक्षा नहीं करता अत:वह मानव जीवन से जुड़े शाश्वत प्रश्नों के साथ तात्कालिक समस्याओं का भी विश्वसनीय समाधान प्रस्तुत करता है। यह दर्शन पुराने सिद्धान्तों की नई व्याख्या नहीं है बल्कि द्दष्टा ऋषि की आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा की रिपोर्टिग है।

श्री अरविन्द की spirituality Affirmative है यह Negative नहीं है। उनके दर्शन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष उसका विकासवाद है, सृष्टिक्रम में विकास के विविध सोपानों के संकेत हमारी प्राचीन परम्परा में उपलब्ध हैं। उपनिषत्कार अन्नमय से लेकर आनन्दमय कोष तक चेतना की यात्रा का उल्लेख करता है। जगत में एक निश्चित विकास है- जड़वस्तु, संवेदनशील प्राणी, मननशील मानव, विज्ञानमय एवं आनन्दमय ऋषि इस विकास के सोपान हैं। जड़ से वनस्पति, वनस्पति से पशु, पशु से मनुष्य क्रमश: उच्चतर सत्ताएँ हैं। जड़ में निहित जीवन ही था जो क्रमश: विकसित हुआ है। पाश्चात्य विकासवाद इस तथ्य को नहीं स्वीकारता लेकिन भारतीय

मानस समझता है कि जड़ में ही ब्रह्म है जो जगत का आधार है। चेतना के अब तक के विकास क्रम में मनुष्य की सत्ता सांक्रान्तिक है। श्रीअरविन्द का विकासवाद हमारे लिए भावी के द्वार खोलकर विभिन्न लोकों के दर्शन कराता है। अपने सहज रुप में प्रकृति जिस विकास पथ पर चल रही है, उसे मनुष्य अपने चेतन प्रयासों से सरल और द्रुतगति दे सकता है।

मनुष्य की यह सजग साधन शैली श्रीअरविन्द का रुपान्तर योग या सर्वांगीण योग है जिसका अनुशील मनुष्य को चेतना के शिखर तक ले जा सकता है जिसे श्रीअरविन्द ने अतिमानस कहा है। यह अतिमानस (Supermind) नीत्से के Supermind से भिन्न है। श्रीअरविन्द का Supermind आध्यात्मिक मन के विभिन्न सोपानों से भी ऊपर की अवस्था है जो सत्य चेतना का पर्याय है। श्रीअरविन्द ने कहा है कि स्वयं मेरा अतिमानसिक स्थिति को प्राप्त करना पृथ्वी-चेतना के लिए अतिमानस के द्वार खोल देने की कुंजी मात्र है।

श्रीअरविन्द के दर्शन में विकास आरोहणों की श्रृंखला है जिसका अंतिम लक्ष्य है अतिमानसिक चेतना एवं अतिमानसिक सत्ता के या ऋत चेतना में आरोहण जो आध्यात्मिक सत्ता की समग्र चेतना है और जिसमें हमें सत्य और समग्र आत्मज्ञान तथा विश्वज्ञान प्राप्त हो सकता है। श्रीअरविन्द ने मानसिक और अतिमानसिक चेतना के मध्य के सोपानों-उच्चतर मन, प्रबुद्धमन, प्रज्ञा एवं अधिमन का बहुत सूक्ष्म विवेचन लाइफ डिवाइन में किया है।

योग साधना द्वारा चेतना के उच्चतर सोपानों की ओर आरोहण ही पर्याप्त नहीं है। इनके अवरोहण (Descent) द्वारा आधार (मन, प्राण एवं शरीर) का रूपान्तर श्रीअरविन्द की साधना का लक्ष्य है। यदि आरोहण का महत्व है तो अवरोहण का भी उतना ही महत्व है। अतिमानस के आरोहण और अवरोहण से मानव आधार का पूर्ण रूपान्तर संभव है जिससे जड़ शरीर प्राण और मन की प्रकृति दिव्य प्रकृति बन जाती है। जड़ और चेतन का द्वन्द्व नई बात नहीं है। श्रीअरविन्द दोनों को सत्य मानते हैं- जगत को भी और ब्रह्म को भी। दोनों का समन्वय उनके दर्शन की विशिष्टता है।

यह जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है और ब्रह्म की सत्ता या स्थिति त्रिविध है- व्यष्टि, समष्टि एवं परात्पर। ये तीनों स्वतंत्र नहीं है बल्कि पूर्णसत्ता के ही तीन रुप हैं। न व्यक्ति निरर्थक है, न जगत। व्यक्ति के लिए पृथ्वीतल पर दिव्य जीवन संभव है। व्यक्ति और जगत गुह्य रुप में ब्रह्म हैं तो प्रकट रुप में भी ये दोनों वही हो सकते हैं। इनकी मानसिक चेतना अतिमानसिक चेतना में रुपान्तरित हो सकती है। श्रीअरविन्द के दर्शन की यह मौलिक स्थापना है। जीवन और जगत से जुड़ी सभी शंकाओं का समाधान श्रीअरविन्द ने किया है। उनकी दृष्टि नितान्त आशावादी है। मानव के लिए यह अवसर है कि वह प्रकृति के सहज योग में सजग साधना द्वारा योगदान करे और अवश्यंभावी विकास की कालावधि को न्यून कर दें।

श्रीमाँ

ज्योतिर्मय मन

-श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द की शिक्षा के अन्दर सबसे प्रधान बात है अतिमानस का अवतरण। श्रीअरविन्द का कहना है कि मन ही चेतना का उच्चतम स्वरूप नही हैं, उससे ऊपर, उससे बहुत उच्च चेतना का एक स्तर, एक तत्व है जो वास्तव में पूर्ण-आलोकमय, पूर्ण शक्तिमय, पूर्ण आनंदमय है और जिसको उन्होंने अतिमानस या विज्ञान नाम दिया है। इस अतिमानस का अवतरण होने पर पृथ्वी के समस्त अज्ञान-अन्धकार का अवसान हो जाएगा और यहाँ एक देवजाति का आविर्भाव होगा। पर अतिमानस का यह अवतरण हठात् नहीं होगा-श्रमविकास की ही एक प्रक्रिया के द्वारा होगा और इस प्रकिया के अन्दर, उस अवतरण के पूर्व, मनुष्य के वर्तमान मन में एक परिवर्तन आएगा।

अवतरणोन्मुख अतिमानस के आलोक से प्रभावित होकर मनुष्य का मन शुद्ध और उन्नत होकर एक ऐसी अवस्था में पहुँचेगा जहाँ वह वर्तमान अज्ञानपूर्ण मन नही रह जाएगा, बल्कि ज्ञानमय हो जाएगा और उसे हम 'ज्योतिर्मय मन' कह सकते है।

यही ज्योतिर्मय मन अतिमानस की ओर ऊपर उठ सकेगा और फिर इसी में अतिमानव अवतरित हो सकेगा। यह 'ज्योतिर्मय मन' क्या है और किस तरह यह कार्य करेगा इसका वर्णन उन्होंने 'शारीरिक-शिक्षण-पत्रिका' के एक लेख में किया है। उसी लेख को हम यहाँ 'श्रीअरविन्द कर्मधारा' के पाठकों के लाभार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

एक नवीन मनुष्यजाति का हमारे लिए अर्थ है मनोमय प्राणियों की एक ऐसी श्रेणी या जाति का आविर्भाव, विकास जिसका मानसिक तत्व अब ठीक वही अज्ञान में रहने वाला मन नहीं होगा जो ज्ञान के लिए प्रयास तो करता है पर अपनी ज्ञान की स्थिति में भी अज्ञान से बंधा होता है, ज्योति की खोज तो करता है पर उसका स्वाभाविक स्वामी नहीं होता, ज्योति की ओर खुला तो होता है पर ज्योति के अन्दर निवास नहीं करता, जो अभी तक पूर्णता प्राप्त यंत्र नहीं है, सत्य से सचेतन और अज्ञान से मुक्त नहीं है।

बल्कि उसके स्थान में वह जाति उस वस्तु को अधिकृत कर रखेगी जिसे हम ज्योतिर्मय मन कह सकते हैं, जो एक ऐसा मन होगा जो सत्य में निवास करने में समर्थ होगा, सत्य के विषय में सचेतन होने में सक्षम होगा और अपने जीवन में अप्रत्यक्ष ज्ञान की जगह प्रत्यक्ष ज्ञान अभिव्यक्त कर सकेगा।

उस जाति की मानस-शक्ति ज्योति का यंत्र होगी और अब अज्ञान का यंत्र नहीं रहेगी। अपनी उच्चतम अवस्था में यह अतिमानस में प्रवेश करने में समर्थ होगी और इसे अधिकृत करने वाली नयी जाति में से ही

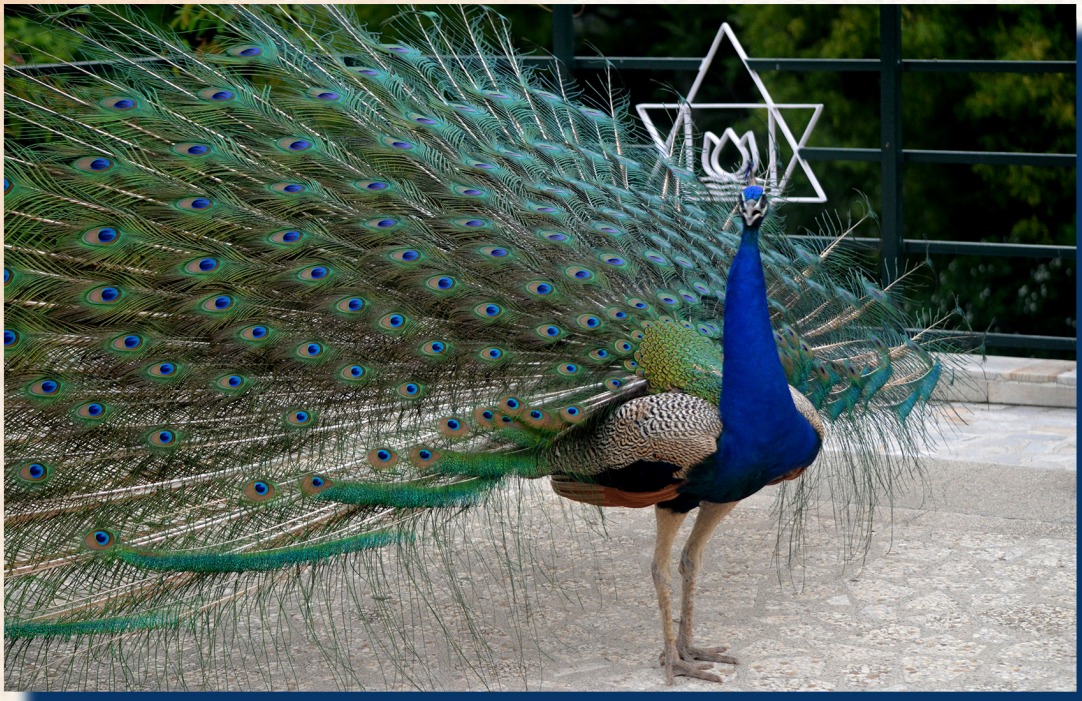

अतिमानवों की जाति तैयार की जाएगी जो पार्थिव प्रकृति के श्रमविकास के नेता के रूप में आविर्भूत होगी। यहाँ तक कि ज्योतिर्मय मन की उच्चतम अभिव्यक्तियाँ, स्थितियाँ अतिमानस का यंत्र होगी, उसका अंश या उसकी शाखाएँ होंगी, उनकी प्राप्ति का अर्थ होगा मनुष्यता को पार कर अतिमानसिक तत्व को धारण करनेवाली अतिमानवता के अन्दर पैर रखना।

सबसे अधिक, इस मन को अधिकृत करने पर मनोमय प्राणी अपनी वर्तमान सोचने, अनुभव करने और होने की सामान्य अवस्थाओं से ऊपर उठकर और अपने-आपको अतिश्रम कर मन की उन उच्चतम शक्तियों के अन्दर चले जाने में समर्थ होगा जो हमारी मनोमयी सत्ता और अतिमानस के बीच में अवस्थित हैं और उसे अधिकृत करना अधिक महत् और अधिक ज्योतिर्मय तत्व की ओर ले जानेवाला सोपान माना जा सकता है।

यह प्रगति क्रमविकास के द्वारा आनेवाली अन्य प्रगतियों की तरह ही, संभव है कि एक ही छलांग में न सिद्ध की जा सके और निश्चय ही सिद्ध नहीं की जा सकती; पर एकदम आरंभ से ही यह अनिर्वाय हो जायगी; स्वयं अपने अन्दर से ऊपर की ओर से इस ज्योतिर्मय मन को उत्पन्न करने वाले अतिमानस का दबाव चरम परिणाम की इस निश्चयता को बाध्य करके ले आयेगी।

इस नयी ज्योति की आरंभिक चमक ही अपने अन्दर उसकी उच्चतम दीप्तियों का बीज वहन करेगी; उसके प्रथम प्रारंभ के अन्दर भी उन दीप्तियों की श्रेष्ठतम शक्तियों के प्रकट होने की निश्चयता विद्यमान रहेगी; क्योंकि

यही विकासक्रम के अन्दर होने वाले प्रत्येक आविर्भाव की पुरानी कहानी है।

इसकी उच्चतम परिपूर्णता का तत्व गुप्त रुप से निवर्तन के अन्दर विद्यमान है जो विवर्तन का पूर्वगामी है और गुप्त तत्व के क्रमविकास को आवश्यक बनाता है। क्योंकि क्रमविकास की समूची कहानी के अन्दर हम यह देख रहे है कि उसके अन्दर दो पहलू है जो एक-दूसरे के पूरक है, उसकी क्रिया को उत्पन्न करते हैं और उसकी अखण्डता के लिए आवश्यक हैं।

प्रकृति के क्रम निवतन के अन्दर सत्ता का निगूढ़ शक्ति-सामर्थ्य और तत्व छिपा हुआ है और वह उस पर्दे के नीचे छिपा पड़ा है जिसे जड़ प्रकृति ने उस पर फेंक रखा है और स्वयं वह प्रकृति ही उस तत्व की उस अनिवार्य शक्ति को अपने अन्दर वहन करती है जो उसकी अन्तर्निहित शक्तियों और गुणों के, उसके सत्य-स्वरुप को गठित करने वाले मूल तत्त्वों के आविर्भूत होने की प्रक्रिया को बाध्य करती है।

जब विकसनशील तत्व प्रकट होता है तब उस प्राकट्य की प्रक्रिया के भी बराबर ही दो पहलू होते है। एक तो क्रम परम्परा होती है जिससे कि वह तत्व निर्वतन की अवस्था से बाहर निकलकर ऊपर उठता है और अपनी शक्तियों को, अपनी संभावनाओं को, अपने अंदर निहित परमदेव की शक्ति को अधिकाधिक अभिव्यक्त करता है; और फिर उस तत्व की सत्ता के सभी प्रकार और रुप निरंतर अभिव्यक्त होते हैं जो उसके मूल स्वभाव की दृश्य, अभिव्यंजक और कार्यक्षम प्रतिमूर्तियाँ होते हैं।

क्रमविकास की प्रक्रिया के अन्दर प्रकट होते हैं जड़तत्व के सुसंगठिक रुप और क्रियाकलाप, प्राण और सजीव प्राणियों के विभिन्न प्रकार, मन और चिंतनशील प्राणियों के विभिन्न प्रकार, आध्यात्मिक तत्व और आध्यत्मिक पुरुषों की प्रोज्वलता और महानता; और इन्हीं आध्यात्मिक पुरुषों का स्वभाव, चरित्र और व्यक्तित्व क्रमविकास की उच्चतम ऊँचाइयों की ओर आरोहण करने के सोपनों को और वह अपने-आपमें जो कुछ है तथा काल और सर्व-प्रकाशक आत्मा के प्रभाव से उसे जो कुछ होना होगा, उसकी अन्तिम वृहत्तम अभिव्यक्ति को सूचित करता है।

क्रमविकास रुप में हम लोग जो कुछ देख रहे हैं उसका यथार्थ रहस्य यही है और इसी ओर उसका प्रवेग है; रुपों की बहुविधता और विभिन्नता तो महज उसकी प्रक्रिया का एक साधन है, उपाय है।

प्रत्येक स्तर अपने परे के स्तर की संभावना और निश्चयता को धारण करता है; अधिकाधिक विकसित रुपों और शक्तियों का आविर्भाव यह सूचित करता है की उनके परे और भी अधिक पूर्ण रुप और अधिक महान शक्तियाँ है तथा प्रत्येक चेतना और उसके अनुरुप सचेतन प्राणियों का आविर्भाव यह क्षमता प्रदान करता है कि परे की एक और महत्तर चेतना में ऊपर उठा जा सके और प्राणियों की एक महत्तर कक्षा उत्पन्न हो और सर्वोच्च देवताओं की कक्षा तक पहुंचा जा सके जिसके लिए प्रकृति प्रयास कर रही है और जिसे अभिव्यक्त करने की

क्षमता दिखाना उसके लिए दैवनिर्दिष्ट कार्य है।

जड़तत्व ने अपने सुसंगठित रुपों को विकसित किया और अन्त में वह सजीव प्राणियों को मूर्त्तिमान करने में समर्थ हुआ। फिर प्राण उद्भिज की अवचेतनता में से निकलकर सचेतन पशु-आकृतियों में ऊपर उठा और उनके भीतर से होता हुआ मनुष्य के चिंतनशील जीवन में पहुँचा।

प्राणश्रित मन ने बुद्धि को विकसित किया, उसके ज्ञान और अज्ञान के, सत्य और भ्रांति के रुपों को विकसित किया और फिर अध्यात्मिक दर्शन और ज्ञान की स्थिति में पहुँचा और अब अस्पष्ट रुप में, मानो शीशे के भीतर से, अतिमानस और एक सत्य-सचेतन जीवन की संभावना को देख सकता है। इस अनिर्वाय आरोहण के भीतर ज्योतिर्मयम मन एक स्तर है, एक अनिर्वाय स्तर है।

एक विकसनशील तत्व के रुप में यह मानव-आरोहण का एक स्तर सूचित करेगा, और एक नये प्रकार के मानव-प्राणियों को विकसित करेगा। यह जो ज्योर्तिमय मन का विकास होगा उसमें निश्चय ही उसकी अपनी शक्तियों की तथा एक आरोहणात्मक मनुष्य जाति के प्रकारों की ऊपर उठनेवाली एक क्रम परंपरा विद्यमान होगी और वह मनुष्य जाति आध्यात्मिकता की और मुड़ने की वृत्ति को, ज्योति ग्रहण करने की क्षमता को और दिव्य मनुष्यत्व और दिव्य जीवन की ओर आरोहण करने की प्रवृत्ति को मूर्तिमान करेगी।

चीजें जैसी है उनके स्वभाव को देखते हुए और अभी क्रमविकास की प्रक्रिया जैसी है उसके स्वभाव को देखते हुए हम कह सकते हैं कि इस ज्योतिमय मन का जो जन्म होगा और वह अपने प्रत्यक्ष-बोधगम्य स्वरुप में और अपनी सच्ची स्थिति में और समुचित क्षेत्र में जो आरोहण करेगा उसकी निश्चय ही दो अवस्थाएँ होंगी।

पहली अवस्था में हम देख सकते है कि ज्योतिर्मय मन अज्ञान के भीतर से अपने-आपको समेट रहा है, अपने उपादान-स्वरुप तत्त्वों को एकत्र कर रहा है, अपने आकारों और प्रकारों को चाहे वे आरम्भ में जितने ही अपूर्ण क्यों न हों गढ़ रहा है और फिर उन सबको पूर्णता की ओर तब तक ढकेलता जा रहा है जब तक वे अज्ञान की सीमा नहीं पार कर जाता और ज्योति में, अपनी निजी ज्योति में प्रकट नहीं हो जाता।

दूसरी अवस्था में हम देख सकते हैं कि वह अपने उच्चतर आकारों और प्रकारों को ग्रहण करता हुआ उस महत्तर स्वभाविक ज्योति में विकसित होता जा रहा है और अन्त में अतिमानस से युक्त हो जाता है और उसके गौण अंश के रुप में या उसके प्रतिनिधि के रुप में रहने लगता है।

इनमें प्रत्येक अवस्था में ही वह अपने निजी स्तरों को निर्धारित करेगा और अपनी व्यक्तिरुप सत्ताओं की श्रेणी को अभिव्यक्त करेगा जो सत्ताएँ उसे मूर्त्तिमान करेंगी और उसे एक पूर्ण जीवन प्रदान करेंगी।

इस तरह सर्वप्रथम स्वयं अज्ञान के भीतर भी दिव्य जीवन की ओर मनुषय के आरोहण की संभावना निर्मित होगी; फिर उसके बाद उस वस्तु की महत्तर सिद्धि होने से, जिसे हम विज्ञानमय मन कह सकते हैं, तथा

मानवप्राणी का रुपान्तर होने से जब यह ज्योतिर्मय मन उदभासित हो जाएगा तब, अतिमानस को प्राप्त करने से पहले भी, और इस पार्थिव चेतना के अन्दर भी, एक रुपान्तरित मनुष्यजाति के अन्दर प्रदीप्त दिव्य जीवन प्रकट होगा।

पूर्व प्रकाशित कर्मधारा-1985, अंक-6

-श्रीअरविन्द

कोई रास्ता नहीं

श्रीमाँ

जो लोग दुखी हैं सोचते हैं, "आह एक दिन आएगा जब मैं मर जाऊँगा, और मेरी सारी मुसीबतें ख़त्म हो जाएँगी,"- वे बड़े ही सीधे लोग हैं, आज्ञानी हैं! यह कु छ भी ख़त्म न होगा, बिल्कुल न होगा, यह चलता ही रहेगा। यह तब तक चलता ही रहेगा जब तक कि वे बाहर नहीं निकल आते हमेशा के लिए! अर्थात, जब वे अज्ञान से ज्ञान में उभर और उबर आएँगे। यही एकमात्र रास्ता है अज्ञान से ज्ञान में उभर आना। और अन्यथा तुम हज़ार बार मर सकते हो, इससे तुम बाहर न निकल पाओगे। यह बिल्कुल बेकार है-यह ऐसे ही चलता रहेगा। बल्कि

कभी कभी तो यह तुम्हें और भी नीचे खीचं लेता है।

Birthday Appeal

Dear Friend,

To all the admirers and well-wishers of Sri Aurobindo Ashram – Delhi Branch, the Ashram is synonymous with Tara Didi, who came to the Ashram in 1976 after spending 32 years in Pondicherry as a direct disciple of the Mother. The love that they feel for her has been expressed year after year on her birthday, July 5. She lives a simple life and needs nothing, which makes it difficult for anyone to give her anything personal, and therefore we always look for something close to her heart that we can do for the Ashram on that day. She loves plants; so, year after year several saplings are planted in the Ashram on her birthday. She loves to provide in the Ashram a platform for the underprivileged youth of the country to grow and develop materially and spiritually. So, last year, many donated towards the construction of a hostel for the youth so that

our youth upliftment programs can expand. The building, 'Ashirvad Block', is almost ready.

Under our youth upliftment programs, which Tara Didi initiated in 1989, hundreds of young boys and girls from all parts of the country, especially remote and rural areas, have spent six months to a few years in the Ashram. Throughout their stay in the Ashram, these young boys and girls get a place to stay, food, a monthly stipend for miscellaneous expenses, and frequently a sponsorship to upgrade their educational qualifications. All these inputs have, over the years, resulted in so many remarkable success stories.

As you know, the economy has taken a bad hit during the pandemic, and the Ashram has not been spared. Therefore, we are using Tara Didi's birthday as an occasion to appeal to the friends, admirers, and well-wishers of the Ashram for a donation. This year on July 5, Tara Didi will be 85 years young. We propose, and appeal to you, to express your love for her, and the activities encouraged at the Ashram by her, by making a donation to the Ashram. No amount is too small, but the amount donated should preferably have a relationship with 85, such as Rs. 85 or 850 or 8500, and so on. The best way to make the donation under the circumstances created by the coronavirus pandemic would be by direct bank transfer, for which our account details are attached. Please note that the account details are different for those paying in Indian Rupees and for those sending money from foreign countries in foreign currency.

In case you prefer sending a cheque, please make it payable to 'Sri Aurobindo Ashram – Delhi Branch Trust'.

You may communicate your mode of payment to us by e-mailing us at

contact@aurobindoonline.in, and also send us your postal address, phone number, and PAN card number. This will make it easy for us to issue you a receipt, and for you to get income tax exemption under section 80 G.

Thanking you for your time to read this long mail.

In the service of The Mother,

The Ashram Family

हे प्रभु! वह मूर्खतापूर्ण भूल, जिसे एक बार मैंने पहचान लिया फिर कभी न दोहराऊँ। मेरे प्रभु, मेरे अन्दर आपके प्रति वह अचल-अटल विश्वास प्रदान करो जो सभी कठिनाइयों से उबर जाने की क्षमता प्रदान करता है; मुझे आपके प्रति अचल-अटल आस्था, पूर्ण शक्ति, गहन विश्वास एवं भक्ति-भावना प्रदान करो।

श्रीअरविन्द

21st योग दिवस

21 जून 2021 को विश्व योगा दिवस के उपलक्ष में

श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा के समाधि प्रांगण में आश्रम के युवा सदस्य योगासन करते हुए.

ध्यान मुद्रा

नाड़ीशोधन प्रणायाम

जानूनमन्

कटीचक्रासन

त्रिकोण आसन की आरंभिक अवस्था

त्रिकोण आसन

शवआसन

साहसी, सहनशील और सतर्क रहें और सबसे बढ़कर, ईमानदार बनें, पूरी ईमानदारी के साथ। तब आप सभी कठिनाइयों का सामना करने में सक्षम होंगे।

-श्रीमाँ